धर्म
की जीवंत धारा
स्वामी
शैलेन्द्र सरस्वती

ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ

धर्म की जीवंत धारा

(अनेक मित्रों के बीच उठे संशय और विवादों की स्थिति से उपजे कुछ प्रश्नों के समाधान के लिए सद्गुरु ओशो शैलेन्द्र जी से परिचर्चा की गई। प्रस्तुत है वह साक्षात्कार-)

4 धर्म की जीवंत धारा

प्रश्न : सारी दुनिया में ओशो का कार्य अनेक ढंगों से हो रहा है। आपके कार्य करने का ढंग क्या है?

ओशो ने जीवन के समस्त पहलुओं के संबंध में मौलिक और क्रांतिकारी दृष्टियां दी हैं। अपने प्रवचनों में ओशो ने जिंदगी के हर पहलू पर अनूठी रोशनी डाली है। इसलिए उनके कार्य से जुड़ने वालों के लिए बहुत से आयाम खुले हैं। अनेक ढंगों से काम किया जा सकता है। ओशो की जीवन दृष्टि को मुख्य रूप से दो हिस्सों में बांटा जा सकता है–

पहली: परिधि के लिए– जैसे कि राजनीति, कला,

विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, अर्थ व्यवस्था, समाज, कम्यून, जनसंख्या विस्फोट, राष्ट्रीय सीमाएं, पर्यावरण, एड्स महामारी तथा विश्व युद्ध के संकट जैसे अनेक विषयों पर उनकी क्रांतिकारी जीवन दृष्टि उपलब्ध है।

दूसरी : केन्द्र के लिए– धर्म और अध्यात्म उनकी जीवन दृष्टि का केंद्रीय तत्व हैं। योग, तंत्र, ताओ, झेन, बौद्ध, जैन, सिक्ख, हसीद, सूफी, बाउल, भक्ति जैसी विभिन्न साधना परंपराओं के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने विस्तार से प्रकाश डाला है।

ओशो की जीवन दृष्टि के विभिन्न पहलुओं को लेकर अनेक मित्र उनके कार्य में जुटे हैं। जुट रहे हैं। आगे भी कार्य की असीम संभावनाएं हैं। उदाहरण के लिए 700 किताबों में से केवल एक 'शिक्षा में क्रांति' पुस्तक पर आधारित उनकी दृष्टि को लेकर हजारों मित्र उस दिशा में सदियों तक कार्य करें, तो वह काम व्यवहारिक रूप से पूरा हो पाएगा। इसी प्रकार अन्य

सैकड़ों आयामों में काम किए जा सकते हैं।

आपने पूछा है, कि आपके कार्य करने का ढंग क्या है?मेरे कार्य का मुख्य पहलू है- ओशो की देशना का केंद्रीय तत्व- अध्यात्म।

मेरा सारा प्रयास है कि लोग समाधि में डूब सकें और समाधि से बुद्धत्व तक की यात्रा कर सकें। खासकर वे मित्र जो बहुत दिनों से ध्यान कर रहे हैं और मुमुक्षा से भरे हैं। अब जरूरत हो गयी है कि वे ध्यान से आगे समाधि का भी कदम उठायें। समाधि में भी कई सोपान हैं। क्रमशः गहराइयों में डूबते हुए समाधि से आत्मज्ञान की ओर यात्रा करें।

याद रखना कि यात्रा तो बुद्धत्व के बाद भी जारी रहती है। ओशो की एक पुस्तक है- 'बियोंड एनलाइटेन्मेंट (बुद्धत्व के पार)।' यह यात्रा तो लम्बी है। लेकिन मैं देखता हूं कि बहुत से लोग ध्यान पर ही रुक गये हैं। मेरा मुख्य काम है, उन साधकों को स्मरण दिलाना- चरैवेति, चरैवेति!

यह जो वैज्ञानिक ढंग से समाधि कार्यक्रमों की संरचना की गई है, जो आत्मजागरण का अभियान शुरू हुआ है, विशेष रूप से उन साधकों के लिए मददगार साबित हो रहा है, जो बहुत वर्षों से ध्यान कर रहे थे और कहीं तक पहुंचकर अब अटकाव महसूस कर रहे हैं। ओशो की देशना का मूल हिस्सा है; समाधि से बुद्धत्व और बुद्धत्व के पार की यात्रा। तो विशेष रूप से हम इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

अन्य मित्र जो ओशो के विविध पहलुओं को लेकर कार्य कर रहे हैं; वे सब निश्चित ही बधाई के पात्र हैं। हम सभी ओशो संन्यासी आपस में कम्पलीमेंट्री हैं-कंट्राडिक्ट्री नहीं हैं। सबने अपने-अपने टेलेंट के अनुरूप ओशो के विविध कार्यक्षेत्रों को चुन लिया है और उसे पूरे प्राणों से कर रहे हैं। यह बहुत सुखद घटना है। क्योंकि सभी काम महत्वपूर्ण हैं। विभिन्न दिशाओं से जीवन को रूपांतरित करना है। सभी मित्रों के योगदान सराहनीय हैं।

प्रश्न : ओशो आचार्य संघ का जन्म कब और किस तरह हुआ?कृपया इस विषय पर प्रकाश डालें।

ओशो की कृपा से, अस्तित्व के सहयोग से और सहज, स्वाभाविक रूप से 'आचार्य संघ' का जन्म हुआ। यह कोई सोच-विचार कर, योजना बना कर नहीं किया गया, यह स्वयं क्रमिक रूप से धीरे-धीरे प्रस्फुटित हुआ।

ओशो सिद्धार्थ जी को बुद्धत्व की घटना के बाद परम सद्गुरु ओशो से संदेश मिला कि शैलेन्द्र व प्रिया को अपने काम में जोड़ो। उन्होंने वैसा ही किया। एक से हम लोग तीन हुए। तत्पश्चात् भारत, नेपाल और जापान के मित्र हमसे जुड़ने लगे। धीरे-धीरे कार्य का दायरा बढ़ने लगा। अब कार्य तेज गति व विस्तार पकड़ने लगा तथा सुव्यवस्थित होने लगा है। (आपको जानकर खुशी होगी कि अभी 2009 तक करीब 700 मित्र बुद्धत्व को उपलब्ध होकर ओशो नाम से अलंकृत हो चुके हैं।)

बुद्धपुरुष दो भांति के होते हैं- अर्हत और बोधिसत्व। कुछ अर्हत किस्म के संबुद्ध होंगे जो अपने आनंद में मग्न हो जायेंगे। कुछ बोधिसत्व किस्म के होंगे जो केवल अपने आनंद में ही नहीं डूबेंगे, बल्कि जगत के लिए भी कुछ करेंगे। तो इस ओशोधारा में दोनों प्रकार के संबुद्ध हैं और भविष्य में भी होंगे।

जो बोधिसत्व हैं वे आचार्य का काम करेंगे। ओशो के संदेश को आगे फैलायेंगे। ताकि हजारों-हजारों लोग जाग सकें। ओशो ने जो दस हजार बुद्धों का सपना देखा था, वह सपना पूरा हो सके। वर्तमान आचार्य संघ ऐसे आत्म जागरण अभियान के प्रति समर्पित हैं।

प्रश्न : समाधि के इन कार्यक्रमों के अंत में आप एक प्रमाण पत्र देते हैं?वह किसलिए?

पहली बात तो मैं आपको यह बताना चाहूंगा कि आत्म जागरण अभियान के ये समाधि शिविर सामान्य ध्यान शिविरों से भिन्न हैं। ये क्रमबद्ध ढंग से अंतर्यात्रा के सोपान हैं। इसमें रिपिटीशन, पुनरावृत्ति नहीं है। एक पड़ाव जब पार कर लिया तो फिर दूसरे पड़ाव पर, फिर तीसरे, चौथे...चौदहवें तक की यात्रा। इस यात्रा को हमने चौदह हिस्सों में विभाजित किया है। साधक क्रमशः एक-एक सोपान ऊपर जाता जायेगा।

जब सैकड़ों लोग इसमें भाग लेने लगे तो सुविधा के लिए यह जरूरी हो गया कि साधकों को ज्ञात हो, कि वे किस सोपान तक की यात्रा कर चुके हैं। और जब वह साधक पुनः आगे की यात्रा करने के लिए आएं तो हम भी पहचान कर सकें कि वह इससे पहले किन-किन कार्यक्रमों में हिस्सा ले चुका है। अतः पहचान के लिए प्रमाण-पत्र देना जरूरी हो गया।

जो आम ध्यान शिविर चलते हैं उनकी रूपरेखा इस भांति है कि एक निश्चित पैटर्न है। एक तरीका है। और वह सुंदर शैली है। ध्यान की अभीप्सा पैदा करने के लिए उनका आयोजन सार्थक है। विशेषत: नए मित्रों को ओशो से जोड़ने में ध्यान शिविर खूब उपयोगी हैं। किंतु साधक जितनी बार उनमें भाग लेता है, वह उन्हीं-उन्हीं विधियों से बारंबार गुजरता है।

आत्म जागरण अभियान के कार्यक्रमों में एक बार, एक कार्यक्रम में हिस्सा लेने के बाद अगली सीढ़ी की यात्रा शुरू हो जाती है। साधकों को बार-बार एक ही कार्यक्रम में आने की जरूरत नहीं रहती। जो मित्र 'ध्यान समाधि' कार्यक्रम कर चुका है उसे 'सुरति समाधि' में आना है। सुरति समाधि करने के बाद फिर साधक को 'निरति समाधि' में प्रवेश करना है। फिर आगे के कार्यक्रमों में भाग लेना है- अमृत समाधि, ऊर्जा समाधि, दिव्य समाधि, चैतन्य समाधि, आनंद समाधि, प्रेम समाधि, अद्वैत समाधि, कैवल्य समाधि, निर्वाण

समाधि, सहज समाधि और परमहंस समाधि।

कुछ मित्रों को इस बात से नाराजगी है कि प्रमाण पत्र क्यों दिया जा रहा है। वे कहते हैं कि ओशो तो ऐसा नहीं करते थे। मैं आपसे पूछना चाहूंगा कि ओशो संन्यास का प्रमाण पत्र नहीं दिया करते थे क्या? ओशो से पहले तो आज तक किसी ने नहीं दिया था। ओशो ने ही तो शुरुआत की थी इस सिलसिले की। शुरुआत में संन्यास के प्रमाण पत्र भी तीन प्रकार के हुआ करते थे-साधक-साधिका, साधु-साध्वी और स्वामी-मां। जब कोई साधक से साधु बनता था, या साधु से स्वामी, तो फिर नया संन्यास सर्टिफिकेट मिला करता था। किन्हीं व्यक्तियों के मन में शिकायत है कि मौखिक ही नहीं बाकायदा लिखित रूप से हम लोग प्रमाण पत्र क्यों दे रहे हैं? मैं आपसे कहना चाहता हूं कि ओशो ने कागज पर ही नहीं अपितु संगमरमर के पत्थरों पर लिखवाकर भी प्रमाण पत्र दिये हैं। स्वामी विमल कीर्ति, स्वामी देवतीर्थ भारती, मा अमृत सरस्वती, मा आनंद सीता,

स्वामी आनंद मैत्रेय की समाधि पर संगमरमर में लिखा हुआ प्रमाण पत्र नहीं है तो वह और क्या है?तो कृपा कर ऐसा मत कहें कि यह कोई नई बात हो रही है। ओशो ने ही इस परंपरा की शुरूआत की है। यहां पर जो यह प्रमाण पत्र दिया जा रहा है, वह कार्यक्रम के शृंखलाबद्ध होने की वजह से है। केवल सुविधा के ख्याल से की गई व्यवस्था है। शीघ्र ही हम कम्प्यूटराइज्ड रिकार्ड रखने का इंतजाम करने जा रहे हैं; फिर सर्टिफिकेट्स देने की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी।
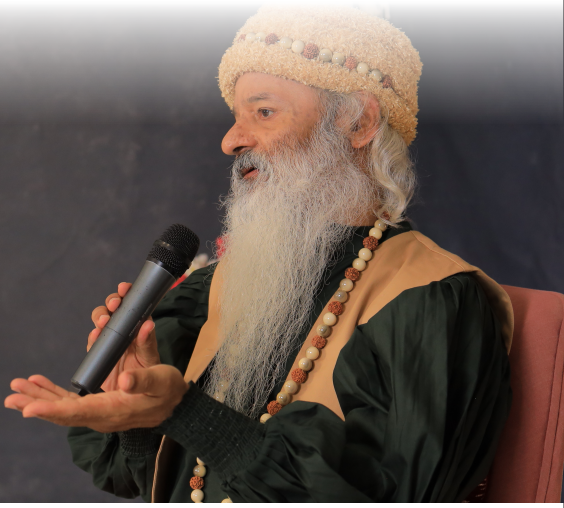
प्रश्न : आप कार्यक्रम में सम्मिलित होने वाले मित्रों को उनकी इच्छानुसार ओशो की नई माला व नाम देते हैं। 'समाधि-संन्यास' के विषय में कुछ कहें?

इस बारे में ओशो की किताबों से मैं कुछ उद्धरण देना चाहूंगा। गीता दर्शन में आश्रम व्यवस्था को समझाते हुए ओशो कहते हैं- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास- ये चार आश्रम हैं। पुराने जमाने में जिसे वानप्रस्थ आश्रम कहा जाता था, मैं उसी को मजबूरी में संन्यास कह रहा हूं क्योंकि अब लोगों में इतना धैर्य नहीं है कि वे इंतजार कर सकें और संन्यास में प्रवेश की तैयारी करें। वे जिस भांति मेरे पास आते हैं उसी स्थिति में उनकी जीवन दिशा को मैं अंतर्यात्रा पर मोड़ना चाहता हूं।

ओशो कहते हैं- **वानप्रस्थ को मैं संन्यास कह रहा हूं। सच पूछो तो यह संन्यास नहीं है। पहले जिसे वानप्रस्थ कहते थे, उसी को मैं संन्यास कह रहा हूं और मैं उम्मीद करता हूं कि भविष्य में इन व्यक्तियों के**

जीवन में सच्चा संन्यास फलित हो सकेगा।" (गीता दर्शन, अध्याय 3, प्रवचन 6)

मैं कहता आखंन देखी" में संकलित 'नव संन्यास क्या?' (प्रवचन 37) में ओशो कहते हैं- 'अभी तो संन्यास की यह प्राथमिक धारणा है। फिलहाल यही हो जाये तो बहुत है। कभी अंतिम संन्यास की भी आशा की जा सकती है। बीज हो जाये तो वृक्ष की भी आशा कर सकते हैं।'

इस वचन को सुनकर स्पष्ट है कि ओशो किस आशा से भरे हुए थे कि एक और गहरा संन्यास फलित हो। पहला संन्यास तो बिलकुल शुरुआत की बात है। माला, कपड़ा और नाम बदलना सिर्फ शुरुआत है, अंतर्यात्रा पर निकलने की घोषणा है। लेकिन अंतर्यात्रा पर जो कुछ कदम चल ले, और आगे बढ़ जाये फिर उसके लिए दूसरी दीक्षा की जरूरत पड़ेगी।

'प्रेम पंथ ऐसो कठिन' पुस्तक के पांचवे प्रवचन में ओशो कहते हैं-

'दूसरी दीक्षा ही असली दीक्षा है।

ठीक इसी प्रकार की बात 'आई एम दि गेट' नामक अंग्रेजी प्रवचनमाला में वे कहते हैं- 'आधुनिक युग में 'सैकेंड इनिसियेशन' (दूसरी दीक्षा) क्यों आवश्यक है-

यह पूरा युग बचकाने स्वभाव से ग्रसित है। कहीं कोई परिपक्वता या प्रौढ़ता नहीं। क्योंकि परिपक्वता आती है प्रतीक्षा से। और प्रतीक्षा तभी संभव हो सकती है जब मानव-चेतना समय-बोध से भरी होने के बजाय समय-बोध से शून्य हो। इस समय-बोध के कारण दीक्षित करना ही नामुमकिन हो गया है। आपको दीक्षित नहीं किया जा सकता। आप दौड़ते हुए बुद्ध के पास से गुजरते हैं और उनसे पूछते हैं कि क्या आप मुझे दीक्षित करेंगे?आप दौड़ रहे हैं। आप राह पर भागते हुए बुद्ध से टकरा जाते हैं। यह चार-पांच शब्द भी आप उनसे रुककर नहीं कह पाते। आप दौड़ते ही रहते हैं। परिपक्वता असंभावना बन गयी है। लेकिन यह समय के प्रति इतनी जागरूकता रुकावट बन गई है, एक सबसे बड़ी बाधा बन गई है। आखिर क्यों?पहले यह क्यों नहीं

थी? अब यह इतनी ज्यादा क्यों हो गई है?

यह समय-बोध सिर्फ उसी अवस्था में गहन होता है, जब आप मृत्यु के भय से भर जाते हैं। आप शायद इसका अंदाजा न लगा पायें, किंतु जितना आपका मृत्यु-बोध बढ़ता जाता है, ठीक उसी अनुपात में आपका समय का बोध भी गहरा होता चला जाता है। मौत सामने खड़ी हो तो एक क्षण भी खोना मुश्किल है। प्रत्येक क्षण जो हाथ से निकल गया, वह सदा के लिए चला गया और मौत पास आती जाती है, आप मरने वाले हैं। इसलिए प्रत्येक क्षण का पूरा उपयोग कर लेना जरूरी है। आप प्रतीक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि प्रतीक्षा का अर्थ होता है- मृत्यु की प्रतीक्षा। मृत्यु घटित होने वाली है, कोई प्रतीक्षा नहीं कर सकता; किसी को पता नहीं कि कल क्या होने वाला है, अगले क्षण में क्या होने को है? मृत्यु भी घटित हो सकती है और आप परेशान हो जाते हैं, आप कांपने लगते हैं, आप दौड़ना शुरू कर देते हैं। आधुनिक दिमाग की यह पूरी की पूरी दौड़ इसलिए है कि आदमी को मृत्यु का भय है।

मृत्यु भय और समय बोध

यह पहली बार हुआ है कि पृथ्वी पर मनुष्य मृत्यु से इतना भयभीत हो गया, क्योंकि ऐसा पहली बार हुआ कि मनुष्य को अमरत्व का ख्याल बिलकुल खो गया है। अगर आपको अपनी अमरता का बोध हो, तो जल्दीबाजी की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। आप उस अनंत से संबंधित हो जाते हैं और फिर समय की कोई कमी नहीं रह जाती। कुछ भी नष्ट नहीं होता, क्योंकि काल तो अनंत है। इसलिए एक क्षण का बीत जाना ऐसा नहीं मालूम देता कि कोई कमी आ गई। हमेशा यह एक-सा ही बना रह जाता है, क्योंकि यह तो अनंत है। ऐसे खजाने में से जिसका कोई माप-तौल आप तय नहीं कर सकते, कुछ भी खो पाना आपके

लिए संभव नहीं। आप उसमें से खर्च करते ही चले जायें, फिर भी उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। जो शेष रह जाता है, वह हमेशा वैसा ही होता है, उतना ही होता है। आप इसमें से कुछ भी निकाल नहीं सकते, उसको कभी कम नहीं कर सकते। लेकिन हम तो समय के आभाव से भरे हैं। समय की कमी है और मृत्यु घटित होने वाली है।

हमें सिर्फ अपने शरीर का ही ख्याल है, जो कि मरणधर्मा है। हमें अपनी आंतरिक-चेतना का कोई बोध नहीं, जो कि अमर है। प्राचीन काल में शाश्वत के बोध से भरे हुए लोग मौजूद थे। उनके इस बोध के कारण, इस अमरत्व के कारण, वे एक वातावरण कायम कर पाते थे, एक ऐसा घेरा निर्मित कर देते थे, जिसके भीतर कोई जल्दबाजी नहीं होती थी। घटनाएं यदि कभी घटती भी थीं, तो बहुत आहिस्ते से घटित होती थीं। तब दीक्षा आसान थी। तब प्रतीक्षा सहज थी। तब समर्पण आसान था। तब उत्तरदायित्व आसान था। ये सभी आज बहुत

मुश्किल हो गए हैं। लेकिन फिर भी दूसरा कोई उपाय, दूसरा कोई विकल्प नहीं है। दीक्षा की आवश्यकता है। और पुरानी दीक्षा अब चलनी असंभव है। इसके बदले में कोई नई दीक्षा आवश्यक हो गई है। पुराने के स्थान पर नये की प्रतिष्ठा आवश्यक हो गई है। मेरी सारी चेष्टा, सारा श्रम इसी संबंध में है।

अगर आप जल्दी में हैं, तो मैं आपको दौड़ने की हालत में ही दीक्षित कर दूंगा, नहीं तो दीक्षा संभव नहीं हो पायेगी। इसलिए मैं प्रतीक्षा को प्राथमिक शर्त के रूप में आपके सामने नहीं रख सकता। पहले मैं आपको दीक्षित करूंगा और फिर कई उपायों से आपकी प्रतीक्षा को बनाये रखने की कोशिश करूंगा। अनेक प्रकार से मैं आपको प्रतीक्षा करने के लिए उकसाता रहूंगा, क्योंकि बिना प्रतीक्षा के परिपक्वता नहीं आ सकती। इसलिए जब आप तैयार हो जायेंगे, तो आपकी दूसरी दीक्षा होगी जो प्राचीन-काल में पहली होती थी। अब वह पहली नहीं हो सकती।

प्राथमिक दीक्षा एवं प्रतीक्षा

कभी-कभी लोग बौखलाहट से भरे होते हैं। कभी कोई हड़बड़ी में मेरे पास आता है। उसने मेरी बातें भी नहीं सुनी। वह मुझसे परिचित भी नहीं होता है और मैं उसे संन्यास में दीक्षित कर देता हूं। यह बहुत बेहूदा है और समझ के बिलकुल बाहर है, लेकिन मैं जानता हूं। और जो कुछ भी मैं कर रहा हूं बहुत जान-बूझकर कर रहा हूं। यह दीक्षा देना तो एक शुरुआत है। क्योंकि सिर्फ इस दीक्षा के माध्यम से ही मैं प्रतीक्षा के लिए आवश्यक उपकरण निर्मित कर पाऊंगा। वह प्रतीक्षा नहीं कर सकता। अगर मैं उससे कहूं कि तुम्हें दीक्षित होने के पहले पांच साल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, तो वह

प्रतीक्षा नहीं कर सकता है। इसलिए यदि इस तरह भी इसे जारी रखा जाय, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। पूरी पद्धति वही है। चूंकि आप प्रतीक्षा नहीं कर सकते, मैं बदल जाता हूं। मैं आपको बाद में प्रतीक्षा करने की इजाजत दे देता हूं, और फिर एक दूसरी दीक्षा भी होगी। यह सिर्फ औपचारिक दीक्षा है। दूसरी अनौपचारिक होगी। दूसरी घटना के रूप में घटित होगी। आप मुझसे कुछ नहीं मांगेंगे, मैं आपको कुछ नहीं दूंगा। यह घटित होगी। आपके अस्तित्व की आत्यांतिक गहराई में यह फलित होगी और जब यह फलित होगी तो आपको इसका पता चलेगा।

समझदारी की भूल भूलैया

आज दुनिया के सामने कोई दूसरा उपाय नहीं रहा, समय के बोध से पीड़ित इस दिमाग के लिए अन्य कोई रास्ता नहीं रहा। पहले मैं आपको धकेलूंगा और फिर मैं आपके ऊपर कोई प्रयोग करूंगा। प्रयोगों का तौर-तरीका बिलकुल दूसरा होगा। पुरानी विधियां प्रयुक्त नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए अब मुझे आपकी समझ के साथ ज्यादा श्रम करना होगा, जिसकी पहले कभी जरूरत नहीं पड़ी। बुद्धि को हमेशा बाधा माना गया। मैं भी जानता हूं कि यह बाधक है। मुझे भी मालूम है कि समझदारी से हकीकत में कुछ नहीं होता। लेकिन मुझे आपकी बुद्धि के साथ काम करना होगा, पूरी

मेहनत करनी पड़ेगी। क्योंकि यदि आज कोई कहे कि आपकी समझ की कोई आवश्यकता नहीं है, तो इस कथन का अर्थ भी आप अपनी समझ से लगाएंगे। ऐसे व्यक्ति से आपका संबंध ही समाप्त हो जाएगा। इसके बाद कोई गहरा आंतरिक संबंध नहीं स्थापित हो सकेगा। इसके साथ हमेशा के लिए बात पूरी हो जायेगी, दरवाजे हमेशा के लिए बन्द हो जाएंगे। आज ऐसी बात नहीं कही जा सकती। हालांकि यह एक आधारभूत सत्य है, फिर भी इसे कहने का कोई उपाय नहीं रहा। पुराने जमाने में यह कहना संभव था।

आज मुझे आपकी समझ के साथ सबसे ज्यादा मेहनत करनी होगी; आपकी बुद्धि के साथ जब मैं इतना श्रम कर सकूं कि वह आपकी पकड़ने की क्षमता के बाहर हो जाए, सिर्फ तभी यह संभव हो पाएगा कि मैं आपको इस बात के लिए राजी कर पाऊं कि समझदारी को फेंक दो, बिलकुल छोड़ दो।" इसके पहले यह मुमकिन नहीं हो सकता। और देखा जाय तो इस तरह के

श्रम की पहले कभी कोई जरूरत नहीं पड़ी। आपके हृदय की स्वीकृति मिलते ही कोई बात आपके दिमाग को भी स्वीकृत हो जाती है, क्योंकि वह बहुत ही ऊपरी और सतही हिस्सा है। अगर आप आश्वस्त हो सकें कि जो कुछ भी कहा जा रहा है, वह संगत है तो फिर मैं असंगत के बारे में बोलना शुरू कर सकता हूं। फिर वास्तव में तर्कातीत रहस्य का आरंभ हो सकता है। लेकिन आपके हृदय के करीब पहुंचने के लिए आपकी बुद्धि के रास्तों पर मेरा चक्कर काटना आवश्यक है। समझदारी की भूल-भुलैयों में अनावश्यक भटकन से गुजरना पड़ेगा, क्योंकि यह इस युग की अनिवार्यता बन गयी है। अब असंगत को पाने के लिए भी चेष्टा का आरंभ संगत से करना होगा।

यह प्रतीक्षा-काल, जो आपकी समझ के पार है, उसके लिए आपको प्रशिक्षित करेगा और इसके साथ-साथ मैं आपको ध्यान की तरफ धकेलूंगा और इसके लिए पूरी कोशिश करूंगा। पुराने दिनों में ध्यान

एक बहुत गुह्य, अंतरंग बात थी। पूरी तैयारी के बाद ही यह आपको सौंपी जाएगी, क्योंकि यह सर्वाधिक गोपनीय खजाने की सर्वाधिक गोपनीय कुंजी है। आपको यह तभी सौंपी जा सकती है, जब आप पूरी तरह इस योग्य हो गए हों, वरना इसे आपको सौंपना मुमकिन नहीं हो सकता।

कुंजी का रहस्य

लेकिन यदि मैं आपके योग्यता हासिल करने तक आपका इन्तजार करने लगूं, तो इसे सौंपना कभी भी संभव नहीं हो पाएगा। इसलिए मैं आपके हाथ में एक चाबी दे दूंगा, जो कि देखा जाए तो एक झूठी चाबी होगी। आप इसके साथ खेलते रह सकते हैं और इसके साथ आप इंतजार कर सकते हैं। और इस चाबी से ज्यादा यह प्रतीक्षा करना ही आपकी मदद करेगा। इस झूठी चाबी के पास होने से आप अधिक आसानी से रह सकेंगे। परन्तु यह चाबी इस तरह से बनायी गई है कि इसका निरंतर प्रयोग करते रहने से यह असली चाबी में परिवर्तित हो जाएगी। इस चाबी को इस तरह से गढ़ा गया है कि आप इससे खोलने की कोशिश करते रहें,

परंतु इसी क्षण में आप इससे दरवाजा नहीं खोल सकते। चाबी झूठी है, इसमें कुछ अनावश्यक कोने भी मौजूद हैं। लेकिन अगर आप इससे बराबर कोशिश करते चले जायें, तो वे अनावश्यक कोने गिर जाएंगे, घिस जाएंगे। यह असली चाबी बन जाएगी और हर रोज यह थोड़ी ज्यादा घूमती चली जाएगी। मैं सोचता हूं कि आप मेरी बात समझ रहे हैं..... मुझे इसकी जगह कोई दूसरी चाबी नहीं देनी होगी। वही चाबी अधिक प्रयोग करने पर असली चाबी बन जाएगी। इसके बेकार कोने घिस जाएंगे। लेकिन मैं आपके योग्य होने तक इंतजार नहीं कर सकता और तब मैं आपको ऐसी चाबी दूं जिससे आप इसी क्षण द्वार खोल सकें। द्वार मौजूद है, चाबी मौजूद है; लेकिन अभी आप योग्य नहीं हैं, अधिकारी नहीं है।

तो दो तरीके हैं। एक तो आप पुराने जमाने के अनुसार प्रतीक्षा करें और मैं आपसे कहूं, पांच साल तक इंतजार करो। यह चाबी रही, वह दरवाजा रहा, लेकिन

पांच साल तक रुको। फिर कभी मुझे मत पूछना कि चाबी कहां है? कभी उत्सुकतावश भी दरवाजे को मत छूना। कभी ताले के पास भी नहीं जाना, इंतजार करो। अगर मैंने कभी यह पाया कि तुम ताले की तरफ झांक रहे हो तो मैं तुम्हें यहां से बाहर कर दूंगा। बस इंतजार करो, ताले की तरफ कभी ताकना भी नहीं, कभी ललचाना भी मत। यह चाबी है और जब इसके अधिकारी होने की योग्यता हासिल कर लोगे, मैं तुम्हें यह सौंप दूंगा।" यह पुरानी पद्धति थी। लोग सालों इंतजार करते थे। कई जीवन लोगों ने इंतजारी में बिता दिए।

नकली और असली चाबी

यह पुराना तरीका था। पहले प्रतीक्षा करो, फिर चाबी सौंपी जायेगी। अब यह संभव नहीं है, इसलिए मुझे पूरी विधि में तबदीली करनी पड़ी है। मैं आपको चाबी सौंप देता हूं, तब आप इसके साथ खेलते रह सकते हैं। बिना किसी व्यस्तता के आप इंतजार नहीं कर सकते। लेकिन व्यस्तता के साथ आप इंतजार कर सकते हैं। अब आपके पास कुंजी है, आपके पास ताला है, दरवाजा है, आपके पास खजाने के बाबत सूचनाएं हैं, आपके पास सब कुछ है। मैं भी खजाने के बारे में आपसे चर्चा करता रहता हूं। आपके पास चाबी है। आप इंतजार कर सकते हैं, आप कुंजी और ताले के साथ खेलते रह सकते है। और इस खेल और प्रतीक्षा से ही गलत चाबी सही चाबी में बदल

जाती है। – ओशो ('आई एम दि गेट' से अनुवादित)

'राम नाम जान्यो नहीं' के दसवें प्रवचन में ओशो कहते हैं :–

'दीक्षा तो पहला कदम है, जो व्यक्ति मौन को पा लेता है, उसके जीवन में वस्तुतः संन्यास घटा।'

'ध्यान समाधि कार्यक्रम' में जो लोग आ रहे हैं, उनके जीवन में मौन घट रहा है। वे समाधि में डूब रहे हैं। इसलिए सच पूछो तो ओशो जिसे वास्तविक संन्यास कह रहे हैं, वह उनके जीवन में घटित हो रहा है।

ओशो का एक वचन– 'अजहूं चेत गंवार' के छठवें प्रवचन से प्रस्तुत करता हूं–

'सरिता बनो। बहाव बनो। कहीं रुको मत। मेरा संन्यास गत्यात्मक है। मेरा शिष्य कहीं रुकेगा नहीं। अनहद के पहले कहीं नहीं रुकेगा। पहुंचना है शून्य में। पहुंचना है अनहद में। 'गिरह हमारा शून्य में, अनहद में विश्राम।' उसके पहले तो संन्यास सिर्फ नाममात्र का ही संन्यास है। जब तक अनहद को नहीं जाना, समाधि को

नहीं जाना। अनहद यानि की मौन में गूंजने वाला संगीत। वहां पहुंच कर ही विश्राम हो सकता है।' अनहद का ज्ञान 'ध्यान समाधि' कार्यक्रम में घटता है।

'सबै सयाने एक मत' प्रवचन माला के आठवें प्रवचन में ओशो कहते हैं-

'ध्यान एवं प्रेम दो साधन हैं। समाधि साध्य है।'

बहुत से मित्र समझते हैं कि ध्यान लक्ष्य है, अथवा प्रेम लक्ष्य है।

ओशो की बात गहराई से समझो। ओशो कह रहे हैं कि ध्यान और प्रेम दो साधन हैं। समाधि साध्य है। लक्ष्य तो समाधि है। जब तक वह लक्ष्य न घट जाये तब तक जानना कि ध्यान की मंजिल अभी आयी नहीं। ध्यान तो मार्ग था। प्रेम भी मार्ग था। दो प्रकार के मार्ग हो सकते हैं। कुछ लोग ध्यान मार्गी होंगे, कुछ लोग प्रेम मार्गी होंगे। लेकिन मार्ग को मंजिल समझने की भूल मत करना। मंजिल तो समाधि है।

'ध्यान समाधि कार्यक्रम' में लोग समाधि में डूबते

हैं। अनहद को जानते हैं। इसलिए दोबारा दीक्षा की आवश्यकता पड़ जाती है। ओशो ने जिसे 'सेकेण्ड इनीसियेशन' अर्थात् दूसरी दीक्षा कहा है।

'लगन महूरत झूठ सब' के छठे प्रवचन में ओशो कहते हैं -

'समाधिस्थ व्यक्ति के जीवन का नाम संन्यास है। जब तक समाधि नहीं घटी, तब तक कैसा संन्यास?' चलो, अगर हम उसे भी संन्यास कहते हैं, तो उसे दो हिस्सों में बांट लेना अच्छा रहेगा। एक प्राथमिक संन्यास हुआ। जहां हमने सिर्फ संकल्प लिया है; कि अब मैं ध्यान में डूबूंगा। समाधि की तरफ बढूंगा। और एक दूसरी दीक्षा जिसे कहें, वस्तुतः जब समाधि घट गयी। एक मील के पत्थर तक पहुंचे। एक सोपान पार किया। तब दूसरा संन्यास घटित हुआ।

अंग्रेजी प्रवचनमाला- 'ओम् शांतिः शांतिः शांतिः' में ओशो कहते हैं -मेरे प्रत्येक संन्यासी को अन्ततः सद्गुरु बनना है। पहले कभी भी यह प्रयोग नहीं किया

गया है। गुरु उन शिष्यों से बहुत डरे होते थे, जो सद्‌गुरु बन सकते हैं। वे असली सद्‌गुरु न थे। सच्चा सद्‌गुरु अंततः अपने समस्त शिष्यों को सद्‌गुरु में बदल देता है। जिस दिन तुम सब अस्तित्व के साथ एकसुर हो जाओगे, जैसे कि मैं एकसुर हूं, वह मेरे आनंद मनाने का दिन होगा।

संन्यास तो सिर्फ शुरुआत है। शिष्यत्व एक आरंभ है। अंततः हमें सद्‌गुरु ही बन जाना है। 'ध्यान समाधि कार्यक्रम' में अस्तित्व के साथ एकसुरता साधी जाती है। प्रभु के स्वर में डूबा जाता है। इसीलिए यह निश्चित रूप से प्राथमिक संन्यास से काफी भिन्न है। और इस भिन्नता को दिखाने के लिए यह जरूरी है कि इसे 'समाधि दीक्षा' या 'अनहद दीक्षा' कहा जाय।

कुछ तो नाम रखना होगा, जब अन्तर्यात्रा की शुरूआत की। ध्यान और प्रेम की तरफ बढ़ना शुरू किया। पहले-पहले कदम उठाये। उसका नाम अगर हम संन्यास दीक्षा कहें तो इस दूसरी दीक्षा का नामकरण हम

'समाधि दीक्षा' कर सकते हैं। यह तो शब्दों का खेल है। शब्द बदले भी जा सकते हैं। मेरी कोई जिद नहीं है कि यही शब्द हों कोई और शब्द भी चुने जा सकते हैं- प्रथम दीक्षा और द्वितीय दीक्षा। नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता। बात कुल इतनी है कि पहले शुरूआत हुई यात्रा की। ध्यान से आरंभ हुआ। फिर यात्रा का मध्य आ गया। मध्य यानि समाधि। और समापन यानी संबोधि।

'जिन-सूत्र' प्रवचनमाला में ओशो ने महावीर के चौदह गुण स्थानों को समझाते हुए कहा है कि प्रथम सात गुण स्थान संसार की तरफ हैं और द्वितीय सात गुण स्थान परमात्मा की तरफ। आठवां गुणस्थान जिसका नाम अपूर्वकरण है, वह परमात्मा की तरफ का पहला गुण स्थान हुआ। आठवें गुण स्थान पर पहुंच कर अपूर्वश्रुत सुनायी देता है, यानी अनाहत नाद गूंजने लगता है।

'ध्यान समाधि कार्यक्रम' में अपूर्वकरण तक की यात्रा हो जाती है। यहां तक आधी से ज्यादा आध्यात्मिक

यात्रा हो चुकी। यह माइल स्टोन है, यानी मील का पत्थर। इसको मार्क करने के लिए ओशो की रंगीन तस्वीर वाली एक सुंदर माला दी जाती है। वह प्रतीक है कि अब अध्यात्म की रंगीन दुनिया में प्रवेश हो गया। अब परमात्मा के साथ फाग खेलो, सद्‌गुरु के रंग में चेतना को रंगो। प्रथम दीक्षा में कपड़े और मन रंगे थे। अब दूसरी दीक्षा में आत्मा को रंगो, इसी को अभी हम अनहद दीक्षा कह रहे हैं। लेकिन याद रखें कि न तो शब्दों का मुझे विशेष आग्रह है... शब्द बदले जा सकते हैं। नाम बदला जा सकता है...न ही विशेष माला से कोई लगाव है। ओशो से प्रेम है। ओशो की तस्वीर से लगाव है। फोटो कोई भी हो सकती है। माला कोई भी हो सकती है। ये गौण बातें हैं। सुनो ओशो के ये अमृत वचन-

संन्यास यानी समाधिपूर्वक जीना

मैं जिस संन्यास की बात कर रहा हूं
वह जीवन को जीने की कला है,
जीवन को त्यागने की नहीं।
वह जीवन को इस परिपूर्णता से,
समग्रता से जीने का ढंग है
कि जैसे जीवन ही परमात्मा है,
कहीं और कोई परमात्मा नहीं।
कुछ त्यागना नहीं है,
कहीं भागना नहीं है।
यहीं जीना है।
मगर जीने की शैली सीखनी है।
ध्यानपूर्वक जीना है।
समाधिपूर्वक जीना है।

-ओशो ('अमृत कण' से)

मेरा यही कहना है कि ओशो की जीवंत धारा चलती रहे इस हेतु इसमें अपना-अपना रंग भरना। आगे भी जो लोग अपना नया रंग भरेंगे, उन्हें भी भरने देना। विविधता का सम्मान करना। मैंने कभी एक गीत लिखा था, जो ओशो के श्री चरणों में समर्पित करके आज की प्रश्नोत्तर चर्चा का समापन करूंगा-

हे ओशो,
रंग दे, रंग दे, मेरा तन रंग दे।
अंग-अंग में अपना रंग दे॥
मन रंग दे, चैतन्य रंग दे।
इन्द्रधनुष के सब रंग, रंग दे॥

हे ओशो,
कृष्ण सरीखी अनासक्ति दे।
रामकृष्ण जैसी भक्ति दे॥
दादू-दरिया के संग कर दे।
रंग दे, रंग दे, मेरा मन रंग दे॥

हे ओशो,
पंतजलि का योग सिखा दे।
राजा जनक सा भोग सिखा दे॥
सूफी फकीरों का ढंग भर दे।
रंग दे, रंग दे, मेरा मन रंग दे॥

हे ओशो,
गौतम बुद्ध का ध्यान बता दे।
अष्टावक्र सा ज्ञान जगा दे॥
दास कबीरा सी चादर दे।
रंग दे, रंग दे, मेरा मन रंग दे॥

हे ओशो,
लाओत्सु वाली दृष्टि दे।
नानक-सी मतवाली मस्ती दे॥
मीरा के घुंघरू का स्वर दे।
रंग दे, रंग दे, मेरा मन रंग दे॥

हे ओशो,
गोरख विधि, शिव का तंत्र दे।
अनहद की गूंज, नमोकार मंत्र दे॥
हंसते-खेलते ध्यान सधे।
रंग दे, रंग दे, मेरा मन रंग दे॥

हे ओशो!
इन्द्रधनुष के सब रंग दे।
मन रंग दे, चैतन्य रंग दे॥